ॐ

भाग्य और पुरुषार्थ

वा

तक़दीर और तदबीर

लेखक—

सूरजभान वकील

वन्द

कुलवन्तराय
ओवरसियर, अमरावती
नकुड़ निवासी

प्रिन्टर—बाबू मंगलकिरण मल्हीपुर प्रेस
मल्हीपुर (सहारनपुर)

भाग्य और पुरुषार्थ

(तक़दीर और तदबीर)

भाग्य, दैव, क़िस्मत या तक़दीर क्या है और पुरुषार्थ, उद्यम, तदबीर वा कोशिश क्या है ? भाग्य से ही सब कुछ होता है वा जीव की अपनी कोशिश भी कुछ काम कर सकती है ? और अगर दोनों ही शक्तियों के मेल से कार्य होता है तो इनमें कौन बलवान है और कौन निर्बल ? भाग्य की शक्ति कितनी है और पुरुषार्थ की कितनी ? भाग्य का काम क्या है और पुरुषार्थ का क्या ? इन सब बातों को जानना मनुष्य के लिये बहुत ही ज़रूरी है। अतः इस लेख में इन ही सब बातों को स्पष्ट करने की कोशिश की जायगी।

एकमात्र भाग्य से ही वा एक मात्र पुरुषार्थ से ही कार्य की सिद्धि मानने को दूषित ठहराते हुये श्री नेमिचन्द्राचार्य गोमट्टसार कर्मकांड गाथा ८९४ में लिखते हैं कि, यथार्थ ज्ञानी भाग्य और पुरुषार्थ दोनों ही के संयोग से कार्य की सिद्धि मानते हैं। एक पहिये से जिस प्रकार गाड़ी नहीं चल सकती, उसी प्रकार भाग्य वा पुरुषार्थ में से किसी एक से ही कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती। बन में आग लग जाने पर जैसे अंधा पुरुष दौड़ने भागने की शक्ति रखता हुआ भी बन से बाहर नहीं हो सकता

वैसे ही एक लंगड़ा पुरुष देखने की शक्ति रखता हुआ भी बाहर नहीं निकल सकता। हां, अगर अन्धा लंगड़े को अपने कन्धे पर चढ़ा ले, लंगड़ा रास्ता बताता रहे और अन्धा चलता रहे तो दोनों ही वन से बाहर हो जावेंगे। इसी प्रकार भाग्य और पुरुषार्थ दोनों ही के सहारे संसारी जीवों के कार्य की सिद्धि होती है किसी एक से नहीं।

भाग्य और पुरुषार्थ क्या है, इसको श्री विद्यानन्द स्वामी ने अष्टसहस्री में (श्लोक नं० ८८ की टीका में) इस प्रकार स्पष्ट किया है—"पहले बांधे हुए कर्मों का ही नाम दैव (भाग्य या क़िस्मत) है, जिसको योग्यता भी कहते हैं, और वर्तमान में जीव जो तदवीर, कोशिश या चेष्टा करता है वह पुरुषार्थ है।" भावार्थ, जो पुरुषार्थ किया जा चुका है और जिसका फल जीव भोग रहा है वा भोगेगा वह तो भाग्य कहलाता है और जो उद्यम अब किया जा रहा है वह पुरुषार्थ कहलाता है। वास्तव में दोनों ही पुरुषार्थ हैं। एक पहला पुरुषार्थ है और दूसरा हाल का पुरुषार्थ।

जीव का असली स्वरूप सर्वदर्शी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और परमानन्द है, परतन्त्रता, इन्द्रियों की आधीनता राग, द्वेष, मोह—आदि उसका असली स्वभाव नहीं है। परन्तु अनादि काल से यह जीव कर्मों के बन्धन में पड़ा हुआ, अपनी ज्ञानादि शक्तियों को बहुत कुछ खोकर राग, द्वेष और मोह के जाल में फंसा हुआ, शरीर रूपी क़ैदख़ाने में बन्द पड़ा हुआ, तरह तरह के दुख भोग रहा है, किन्तु इस प्रकार कर्मों के जाल में फंसा रहकर भी जीव का निज स्वभाव सर्वथा नष्ट नहीं होगया है और न सर्वथा

नष्ट हो ही सकता है। * इस कारण कर्मों के जाल में पूरी तरह फंसे हुए जीवों की भी ज्ञान आदि शक्तियां कुछ न कुछ काम ज़रूर करती ही रहती हैं, जिनके कारण ही वे अजीव पदार्थों से अलग पहचाने जाते हैं और जीव कहलाते हैं इन ही बची हुई शक्तियों के द्वारा जीव पुरुषार्थ करके कर्मों के बंधनों को कम और कमज़ोर कर सकता है और होते होते सब ही बंधनों को तोड़कर अपना असली ज्ञानानन्द स्वरूप प्राप्त कर सकता है।

सब ही जीव अनादि काल से मिथ्यात्व में फंसे हुए संसार में भ्रमण करते फिर रहे हैं। इन ही में से जो हिम्मत करते हैं वे अपनी विचार शक्ति से काम लेकर मिथ्यात्व को छोड़ सम्यक्त्व ग्रहण करते हैं और फिर और भी ज़्यादा हिम्मत कर राग द्वेष से मुंह मोड़, गृह त्याग, मुनि हो जाते हैं और महाव्रतों को पालन कर, तप आदि के द्वारा घातिया कर्मों को क्षय कर केवल ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं और फिर अघातिया कर्मों को भी नाशकर सदा के लिये मोक्ष में जा विराजते हैं। इस प्रकार जिन्होंने पुरुषार्थ कर कर्म शत्रुओं को जीत परम पद प्राप्त कर लिया है वे धन्य हैं और जिन्होंने पुरुषार्थ नहीं किया है वे घास फूंस और लकड़ी पत्थर आदि निर्जीव पदार्थों की तरह कर्मों के बहाव में बहते हुए संसार में रुलते हुए तरह तरह की ठोकरें खाते फिर रहे हैं और बराबर रुलते फिरते रहेंगे जबतक कि हिम्मत करके कर्मों का मुक़ाबला नहीं करेंगे और उनको दबाने और क्षय करने की कोशिश नहीं करेंगे।

---

* देखो गोमटसार गाथा २९ की संस्कृत टीका और टोडरमल जी का हिन्दी अनुवाद।

कर्मों का असर दूर करने की तीन हालतें होती हैं एक क्षय अर्थात् कर्म का बिलकुल ही नाश कर देना, दूसरे उपशम अर्थात् कुछ समय के वास्ते असर करने से रोक देना, तीसरे क्षयोपशम अर्थात् कर्म के उस बड़े हिस्से को जो जीव के स्वभाव को सर्वथा घात करता हो, बिना फल दिये ही नाश कर देना, हल्का असर करने वाले हिस्से का फल देते रहना और बाक़ी हिस्से का आगामी को फल देने के वास्ते सत्ता में रहना ‡। यह ऐसा ही है जैसा कि शरीर में कोई दुखदाई मवाद इकट्ठा हो जाने पर या कोई दुखदाई वस्तु खा लेने पर, उसको वमन (क़ै) वा दस्तों के द्वारा बिल्कुल ही निकाल बाहर कर शरीर को शुद्ध कर देना तो क्षय है। क़ै, दस्त वा पसीना आदि के द्वारा दुखदाई मवाद को न निकाल कर अर्थात् बीमारी के कारणों को दूर न कर उस बीमारी की तुरन्त की पीड़ा को कुछ समय के वास्ते किसी औषधि के द्वारा दबा देना उपशम है। और किसी औषधि के द्वारा अधिक दुख देने वाले मवाद का तो निकल जाना परन्तु कुछ हलके से मवाद का बाक़ी रह जाना जिससे कुछ हलका सा दुख होता रहे और कुछ मवाद का आगे को असर करने के वास्ते दबा रहना क्षयोपशम है। इस प्रकार कमती बढ़ती अनेक तरीक़े से कर्मों का मुक़ाबिला किया जा सकता है। जो पुरुषार्थी हैं वे इन सब ही रीतियों से कर्मों से लड़ाई करते हैं और इनको दबा दबा कर आत्मोन्नति करते चले जाते हैं।

कर्मों का एक एक हिस्सा नित्य ही फल देकर बेअसर होता रहता है परन्तु मुनि महाराज तप आदि महान

---

‡ देखो गोमट्टसार जीव कांड गाथा १३ की संस्कृत टीका और पं० टोडरमल जी कृत हिन्दी अनुवाद।

पुरुषार्थों के द्वारा फल देने से पहले ही कर्मों का नाश कर देते हैं * आत्मध्यान रूपी अग्नि से कर्म रूपी ईंधन को भस्म करके धूयें वा गर्द की तरह उड़ा देते हैं। राग द्वेष रूपी चिकनाई से ही कर्म परमाणुओं का बंध आत्मा से होता है। मुनि महाराज अपने तप और ध्यान आदि पुरुषार्थ से राग द्वेष का नाश कर देते हैं जिससे कर्म बंधन की चिकनाई दूर होकर बंधे कर्म अलग होकर आप से आप ही उड़ जाते हैं।

कर्मों के उदय से सुख वा दुख जो भी हो उसमें सुख वा दुख मानने से, राग द्वेष करने से, आगामी को फिर कर्म बंध होता है, इस प्रकार कर्मों का उदय होना और बंधना बराबर होता ही रहता है। मुनि महाराज कर्मों के उदय होने पर उसमें कुछ भी सुख दुख नहीं मानते हैं, किसी भी प्रकार का कोई राग द्वेष नहीं करते हैं, सब ही अवस्था में समभाव रखते हैं, इस कारण उनको आगामी कर्मों का बंध नहीं होता। इस ही प्रकार भारी से भारी परीषहों के आने पर भी, कठिन से कठिन आपत्ति के आजाने पर भी वे किसी प्रकार का दुख नहीं मानते हैं, सर्व प्रकार से समभाव ही रखते हैं, इस ही से कर्मों के आने को रोकते हैं।

किसी बाह्य प्रबल कारण के मिलने पर कर्म समय से पहले भी उदय में आ जाते हैं जिसको उदीरणा कहते हैं। बुरे वा भले पहले बांधे हुये कर्मों का ज़ोर वा रस और फल देते रहने का समय भी पीछे के बंधे हुवे भले बुरे कर्मों के द्वारा घट बढ़ सकता

---

* देखो भगवती आराधनासार गाथा १८५० की संस्कृत टीका अपराजित सूरिकृत, तथा लब्धिसार की टीका टोडरमल जी कृत में गाथा ३९२ के नीचे का प्रश्नोत्तर।

है, यहां तक कि सुख देने वाला सातावेदनीय कर्म बदलकर दुख देने वाला असाता रूप हो जाय, और दुख देने वाला असाता कर्म बदलकर सुख देने वाला साता रूप हो जाय अर्थात् पुन्य कर्म बदलकर पाप रूप हो जाय और पापकर्म बदलकर पुन्य रूप हो जाय। यह सब पुरुषार्थ की ही महिमा है जिससे सब ही कुछ हो सकता है। कर्मों के इस प्रकार अदलने बदलने को संक्रमण कहते हैं। †

पुरुषार्थ के द्वारा कर्मों का पैदा होना और बंधना भी बंद हो जाता है जिसको संवर कहते हैं। कर्मों के आठ भेद हैं, जिनके भेद प्रभेद अर्थात् उत्तर प्रकृतियां १४८ हैं। बिना किसी प्रकार का चारित्र धारण किये एक मात्र मिथ्यात्व के दूर होने से ही कर्मों की १६ प्रकृतियों का बंध होना बंद हो जाता है, फिर अनन्तानुबंधी कषाय दूर होकर सम्यक्ती हो जाने से अन्यभी २५ प्रकृतियों का बंध होना रुक जाता है, इस प्रकार चौथे गुणस्थानी अव्रति सम्यग्दृष्टि को ४१ कर्म प्रकृतियों का बंध नहीं होता है, इतना भारी काम एक मामूली से पुरुषार्थ से ही होने लगता है, फिर अणुव्रती श्रावक होने पर अन्यभी १० कर्म प्रकृतियों का बंध होना रुक जाता है, इस ही प्रकार पुरुषार्थ कर ज्यों ज्यों आगे बढ़ा जाता है त्यों त्यों अन्य भी अनेक कर्मों का बंध होना रुकता जाता है और अन्त को राग द्वेष के सर्वथा नाश हो जाने पर सब ही कर्मों का बंध होना रुक जाता है, यह सब पुरुषार्थ की ही महिमा है।

पुरुषार्थ हीन के सब ही कार्य भ्रष्ट होते हैं, और पुरुषार्थी के सब ही कार्य सिद्ध होते हैं। यह बात सब ही सांसारिक कार्यों में भी स्पष्ट दिखाई देती है। मनुष्य अपने

† देखो गोमट्टसार कर्म कांड गाथा ४३८, ४३९

पुरुषार्थ से खेती करके तरह तरह के अनाज, तरह तरह के फल पैदा करता है; एक वृक्ष की दूसरे वृक्ष के साथ क़लम लगा कर उनके फलों को अधिक स्वादिष्ट और रसभरे बनाता है; अनाज को पीस-पोकर और आग से पका कर सत्तर प्रकार के सुस्वादु भोजन बनाता है। मिट्टी से ईंटें बनाकर, फिर उनको आग में पकाकर आकाश से बातें करने वाले बड़े बड़े ऊँचे महल चिनता है, हज़ारों प्रकार के सुन्दर-सुन्दर वस्त्र बनाता है, लकड़ी, लोहा, तांबा, पीतल, सोना, चांदी आदि ढूंढ कर उनसे अनेक चमत्कारी वस्तुयें घड़ लेता है; कागज़ बनाकर पुस्तकें लिखता है और चिट्ठियां भेजता है; तार, रेल, मोटर, इञ्जिन, जहाज़, घड़ी, घंटा, फोन, सिनेमा आदिक अनेक प्रकार की अद्भुत कलें बनाता है और नित्य नई से नई बनाता जाता है; यह सब उसके पुरुषार्थ की ही महिमा है। पशु इस प्रकार का कोई भी पुरुषार्थ नहीं करते हैं, इस ही कारण उनको यह सब वस्तुयें प्राप्त नहीं होती हैं। उनका भाग्य वा कर्म उनको ऐसी कोई वस्तु बनाकर नहीं देता है, घास-फूस जीव जन्तु आदि जो भी वस्तु स्वयं पैदा हुई मिलती हैं उनपर ही गुज़ारा करना पड़ता है, बरसात का सारा पानी, जेठ असाढ़ की सारी धूप, शीत काल का सारा पाला अपने नंगे शरीर पर ही झेलना पड़ता है, और भी अन्य अनेक प्रकार के असह्य दुख पुरुषार्थ हीन होने के कारण सहने पड़ते हैं!

इसके उत्तर में शायद हमारे कुछ भाई यह कहने लगें कि मनुष्यों को उनके कर्मों ने ही तो ऐसा ज्ञान और ऐसा पुरुषार्थ करने का बल दिया है जिससे वे ऐसी ऐसी अद्भुत वस्तुयें बना लेते हैं, पशुओं को उनके कर्मों ने ऐसा ज्ञान और पुरुषार्थ नहीं दिया है, इस कारण वे नहीं बना सकते हैं। मनुष्यों को उनके कर्म यदि ऐसा ज्ञान और

उद्यम करने की शक्ति न देते तो वे भी कुछ न कर सकते, यह सब भाग्य वा कर्मों की ही तो महिमा है जिससे मनुष्य ऐसे अद्भुत कार्य कर रहे हैं। परन्तु प्यारे भाइयो! क्या आपके ख़याल में तीर्थंकर भगवान को जो केवलज्ञान प्राप्त होता है, जिससे तीनों लोक के सब ही पदार्थ उनको बिना इन्द्रियों के सहारे के साक्षात् नज़र आने लग जाते हैं तो क्या केवल ज्ञान की यह महान् शक्ति भी कर्मों की ही दी हुई होती है? नहीं ऐसा नहीं है। यह सब शक्ति तो उनको उनके पुरुषार्थ के द्वारा कर्मों के नाश करने से ही प्राप्त होती हैं, कर्मों को दी हुई नहीं होती है। कर्म तो जीव को कुछ देते नहीं किन्तु बिगाड़ते ही हैं। कर्मों का कार्य तो जीव को ज्ञान वा विचार शक्ति वा अन्य किसी प्रकार का बल देना नहीं है, किन्तु इसके विपरीत कर्मों का काम तो जीव के ज्ञान और बल वीर्य को नष्ट कर देने का ही है। ज्ञान और बल वीर्य तो जीव का निज स्वभाव है, जितना जितना भी किसी जीव का बलवीर्य नष्ट भ्रष्ट और कम हो रहा है वह सब उसके कर्म शत्रुओं का ही तो काम है, और जितना जितना जिस किसी जीव में ज्ञान और बल वीर्य है वह उसका अपना असली स्वभाव है, जिसको नष्ट-भ्रष्ट करने के लिये कर्मों का क़ाबू नहीं चल सका है। इस कारण मनुष्य अपने ज्ञान और विचार बल से जो यह लाखों करोड़ों प्रकार का सामान बनाता है वह सब अपनी निज शक्ति से ही बना रहा है, कर्मों की दी हुई शक्ति से नहीं। कर्मों का क़ाबू चलता तो, वे तो उसकी यह शक्ति भी छीन लेते और कुछ भी न बनाने देते।

मनुष्यों की बनिसबत पशुओं पर कर्मों का अधिक क़ाबू चलता है, इसी वास्ते उन बेचारों को यह कर्म उनकी ज़रूरतों का कुछ भी सामान नहीं बनाने देते हैं। कर्म तो

जीव के शत्रु हैं, इस कारण उनका काम तो एक मात्र बिगाड़ने का ही है—सँवारने का नहीं। भेद सिर्फ़ इतना ही है कि जब कोई कर्म हमको अधिक क़ाबू में करके अधिक दुख पहुँचाता है तो उसको हम पाप कर्म कहते हैं और जब कोई कर्म कमज़ोर होकर हम पर कम क़ाबू पाता है जिससे हम अपने असली ज्ञान गुण और बल वीर्य से कुछ पुरुषार्थ करने के योग्य हो जाते हैं और कम दुख उठाते हैं, तो इसको हम पुण्य कर्म कहने लग जाते हैं और ख़ुश होते हैं।

जिस प्रकार बीमारी मनुष्य को दुख ही देती है सुख नहीं दे सकती है, उसी प्रकार कर्म भी जीव को दुःख ही देते हैं सुख नहीं दे सकते हैं। बीमारी भी जब मनुष्य को अधिक दबा लेती है, उठने बैठने भी नहीं देती है, होशहवास भी खो देती है, खाना पीना भी बन्द कर देती है, नींद भी नहीं आती है, रात दिन असह्यपीड़ा ही होती रहती है, तब वह बीमारी बहुत बुरी और महानिंद्य कही जाती है; परन्तु जब योग्य औषधि करने से वह असह्य बीमारी कम होकर सिर्फ़ थोड़ी-सी कमज़ोरी आदि रह जाती है, मनुष्य अपने कारोबार में लगने योग्य हो जाता है, तो ख़ुशियां मनाई जाती हैं, परन्तु यह ख़ुशी उसको बीमारी ने नहीं दी है, किन्तु बीमारी के कम होने से ही हुई है। इसी प्रकार कर्म भी जब जीव को अच्छी तरह जकड़ कर कुछ भी पुरुषार्थ करने के योग्य नहीं रहने देते हैं तो वे खोटे व पापकर्म कहलाते हैं और जब जीव अपने शुभ परिणामों के द्वारा कषायों को मंद करके कर्मों को कमज़ोर कर देता है जिससे वह पुरुषार्थ करने के योग्य होकर अपने सुख की सामग्री जुटाने लग जाता है तो वह उन हलके कर्मों को शुभ व पुण्य कर्म कहने लग जाता है।

कर्म बन्धन

कर्म क्या हैं, जीव के साथ कैसे उनका सम्बन्ध होता है और वे क्या कार्य करते हैं, इसका सारांश रूप कथन इस प्रकार है कि रागद्वेष के करने से आत्मा में एक प्रकार का ऐसा संस्कार पड़ जाता है जिससे फिर दोबारा रागद्वेष पैदा हो, उस दोबारा पैदा हुवे रागद्वेष से फिर रागद्वेष पैदा होता है, इस प्रकार एक चक्रसा चलता रहता है। इसही को कर्म बन्धन होना कहते हैं। मिट्टी के बर्तन बनाने के वास्ते कुम्हार चाक को डंडे से घुमाता है, परन्तु डंडा और कुम्हार दोनोंके अलग हो जाने पर भी कुछ देर तक चाक घूमता ही रहता है, डंडे के द्वारा घुमाने से चाक में घूमते रहने का संस्कार पड़ जाता है इस ही कारण घुमाना बन्द करने पर भी वह चाक कुछ देर तक घूमता ही रहता है, इस ही प्रकार डोरी लपेट कर जब लट्टू घुमाया जाता है तो डोरी अलग होने पर भी बहुत देर तक वह लट्टू आप से आप ही घूमता रहता है, इसी का नाम संस्कार हो जाना या आदत पड़ जाना है। बार बार किसी बात को करते रहने से जो आदत पड़ जाती है, वह पक्की होकर छूटनी मुश्किल हो जाती है। भंग, चरस या शराब आदि किसी नशे की आदत को तो छोड़ने का इरादा करने पर भी मुश्किल से ही छूटती है, नशे की बात तो दूर रही, जिन लोगों को खाने में तेज़ मिरच डालकर चटपटा खाना खाने की आदत हो जाती है वे उसके खाने से नुक़सान होने पर भी उसका खाना नहीं छोड़ते हैं, यहां तक कि दुखती आंखों भी खाते हैं, जिससे और भी ज़्यादा आंख खड़कती है, तड़पते हैं, चिल्लाते हैं और सिर पीटते हैं, जानते हैं कि मिरच खाने से ही यह तकलीफ़ बढ़ी है परन्तु फिर भी

खाते हैं और दुख उठाते हैं। यह ही हाल राग द्वेष आदि विषय कषायों का है जिनके करने से भी फिर २ वैसा ही करने का संस्कार पड़ता है और बार बार करते रहने से वह संस्कार ज़्यादा २ मज़बूत होकर छूटना मुश्किल हो जाता है, यह ही कर्म बंधन है जिसके चक्कर में सब ही संसारी जीव पड़े हुये हैं। इस ही से जीव अपनी असली चाल भूलकर, इन रागद्वेष रूपी संस्कारों के अनुसार बिल्कुल ही उलटी पुलटी चाल चल रहा है।

परन्तु किसी भी वस्तु में कोई बिगाड़ बग़ैर किसी दूसरी वस्तु के मिलने के नहीं आ सकता है, यह पदार्थ-विद्या का अटल सिद्धान्त है। देह में भी रोग तब ही उत्पन्न होता है जब कोई पर पदार्थ (foreign matter, ग़ैर माद्दा) आ घुसता है। घड़ी भी ठीक चलते २ तब ही ग़लत चाल चलने लगती है जबकि उसके पुर्ज़ों में मैल आ जाता है पुर्ज़ों को आसानी से चलते रहने के लिये उनको कुछ तेल आदि कोई चिकनाई लगानी पड़ती है, घड़ी की डिबिया या बक्स के अन्दर थोड़ी बहुत हवा तो ज़रूर होती ही है, उस हवा में हलका सा जो कुछ गर्दा मिला हुवा होता है, उसके बहुत ही बारीक कण पुर्ज़ों की चिकनाई के कारण उन पर जम जाते हैं और उनकी चाल को बिगाड़ देते हैं। इस ही प्रकार राग द्वेष के कारण आत्मा में भी किसी प्रकार का हलन चलन होने से देह के अन्दर के अति सूक्ष्म पुद्गल परमाणु जो आत्मा में घुल मिल सकते हों, वह उसमें मिल जाते हैं, यह ही पर पदार्थ है जिसके कारण आत्मा में बिगाड़ आता है। रागद्वेष ही इसमें चिकनाई का काम करते हैं। रागद्वेष रूपी चिकनाई के बिना कोई भी किसी प्रकार का मैल आत्मा को नहीं लग सकता है। मैल भी कहीं से खेंच कर लाना नहीं पड़ता है, जिस प्रकार घड़ी के अन्दर की हवा में मिला

हुवा गर्दा ही पुर्जों को चिपट कर उसकी चाल को बिगाड़ देता है, बिल्कुल इस ही तरह शरीर के अन्दर जो भी अति सूक्ष्म पुद्गल परमाणु मौजूद होते हैं वह ही राग द्वेष रूपी चिकनाई के कारण आत्मा से चिपटकर उसकी चाल को बिगाड़ देते हैं; यह ही कर्म बंधन है जो दो प्रकार का कहा जाता है। आत्मा के अन्दर राग द्वेष का उत्पन्न होना तो भाव बंध कहलाता है और इस भाव बंध अर्थात राग द्वेष के उत्पन्न होने के कारण उसकी चिकनाई से देह के अन्दर आत्मा के नज़दीक के जो अति सूक्ष्म पुद्गल परमाणु मैल के तौर पर आत्मा में लग जाते हैं वे द्रव्य बंध कहलाता है! इस प्रकार आत्मा में मैल के लग जाने अर्थात् बिगाड़ के आ जाने से आत्मा की चाल में ख़राबी आकर फिर रागद्वेष पैदा होता है और उस रागद्वेष से फिर दोबारा सूक्ष्म पुद्गल परमाणुओं का मैल आत्मा में जम जाता है, जिससे फिर रागद्वेष उत्पन्न होता है, इस प्रकार एक चक्कर सा चलता रहता है, भावकर्म से द्रव्य कर्म और द्रव्य कर्म से भाव कर्म पैदा होते रहते हैं, जिससे रहट की घड़ी की तरह यह चक्कर चला ही करता है।

ऊपर के इस कथन से यह बात साफ़ खुल जाती है कि कर्म कोई ख़ास वस्तु नहीं है जो कहीं से ढूंढ कर लाई जाती हो या आप ही कहीं से आती हो, किन्तु घड़ी के पुर्जों में चिपटने वाले उस मामूली गर्द के समान जो घड़ी के अन्दर की हवा में मिला हुआ हो और घड़ी के पुर्जों से चिपटकर घड़ी की चाल को बिगाड़ देता हो, आत्मा में भी रागद्वेष रूपी चिकनाई लग जाने से देह के अन्दर की हवा में मिले हुवे गर्द के बहुत बारीक कण जो अति सूक्ष्म होने के कारण आत्मा में घुल मिल सकते हों, वह ही

आस पास के मामूली परमाणु आत्मा से चिपटकर उसकी चाल को बिगाड़ देते हैं और द्रव्य कर्म कहलाने लगते हैं।

संस्कार कहो वा कर्म बंधन कहो, चाहे जो नाम रक्खो, बात असल यह ही है कि कषाय करने से फिर फिर कषायें पैदा होने के संस्कार पड़ते हैं। कषायों के उत्पन्न होते रहने से जीव की उन्मत्त की सी दशा हो जाती है, जिससे उसको अपने भले बुरे की कुछ भी तमीज़ नहीं रहती है, बुद्धि भ्रष्ट होकर अपने को कुछ से कुछ समझने लग जाता है; आप ही अपने हाथों अपना अहित करने को उतारू हो जाता है, विषय कषायों के बस होकर अपने को बेबस समझने लग जाता है, इस ही का नाम मोहनीय कर्म है जिसके दो भेद हैं एक दर्शन मोहनी और दूसरा चारित्र मोहनी; अपने को कुछ से कुछ समझ बैठना, बुराई को भलाई और अहित को हित मानने लगना यह ही दर्शन मोहनीय का काम है और यह ही मिथ्यात्व है ! कषायों का भड़कना, विषय कषाय में फंसना, रागद्वेष करना यह चारित्र मोहनीय का काम है।

कषायों के भड़कने से आत्मा की जानने की शक्ति पर भी पर्दा पड़ जाता है, वह शक्ति दो प्रकार की है, एक दर्शन और दूसरा ज्ञान, संसारी जीव अपनी इन्द्रियों के द्वारा जब किसी वस्तु को जानने की तरफ़ अपना उपयोग लगाता है तो तुरन्त ही उसको उस वस्तु का ज्ञान नहीं होता है किन्तु सब से पहले उसको यह ही मालूम होता है कि कुछ है, इस ही को दर्शन कहते हैं, फिर जब वह यह जानने लगता है कि उसका कुछ आकार है या उसका कोई रंग है या किसी प्रकार की कोई गंध है या किसी प्रकार का कोई स्वाद है, इत्यादि जब किसी भी इन्द्रिय का कोई विषय उस वस्तु में मालूम होने लगता है, तब ही से वह जानना ज्ञान कहलाता है। दर्शन पर पर्दा पड़ना अर्थात उसमें ख़राबी

आना दर्शनावरण कहलाता है और ज्ञान में किसी प्रकार की ख़राबी आना ज्ञानावरण कहा जाता है। कषाय के कारण जीव की आत्म शक्तियों में, उसके बलवीर्य में भी रुकावट पड़ने लग जाती है, जिसको अन्तराय कहते हैं। इस प्रकार कषायों के उत्पन्न होने से दर्शनावरणीय, ज्ञानावरणीय, मोहनीय और अन्तराय यह चार कर्म आत्मा के असली स्वभाव को घात करते हैं, इस ही वास्ते घातिया कहलाते हैं, कषायों के सर्वथा नाश होने पर, यह चारों ही कर्म नाश होकर अनन्तदर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त शक्ति नाम का आत्म का असली स्वरूप प्रगट हो जाता है।

कषायों के कारण आत्मा में मैल लग जाने से उसकी कुछ ऐसी हालत भी हो जाती है जिससे उसके असली स्वभाव में तो फ़रक़ नहीं आता है किन्तु देह में क़ायम रहकर आयु पूर्ण होने तक संसार में ज़रूर विचरना पड़ता है। ऐसी हालत पैदा कराने वाले कर्म अघातिया अर्थात जीव के स्वभाव को घात न करने वाले कहलाते हैं। यह अघातिया कर्म भी चार प्रकार के हैं, वेदनीय, गोत्र, आयु और नाम। इन्द्रियों के विषय का अनुभव कराना वेदनीय कर्म का काम है, इसके दो भेद हैं, साता और असाता, साता से सुख का अनुभव होता है और असाता से दुख का, जैसा कि गोमट्टसार कर्मकांड गाथा १४ में लिखा है,

अक्खाणं अणुभवणं वेयणीयं सुहसरूवयं सादं
दुक्खसरूवमसादं तं वेदयदीदि वेदणियं ॥

अर्थ पं० टोडरमल जी कृत—'इन्द्रियन के अपने विषयन का अनुभवन—जानना तो वेदनीय है, तहां सुख स्वरूप साता है, दुख स्वरूप असाता है तिन सुख दुखन को वेदयति कहिये अनुभव करावे सो वेदनीय कर्म है।

परन्तु यह वेदनीय कर्म मोहनीय कर्म के उदय के बल से अर्थात् रागद्वेष के होने पर ही सुख दुख का अनुभव करा सकता है; जैसा कि गोमट्टसार कर्मकांड गाथा १६ में लिखा है।

घादिव वेयणीयं मोहस्स बलेण घाददे जीवं।
इदि घादीणं मज्झे मोहस्सादिम्हि पठिदन्तु ॥

अर्थ पं० टोडरमल जी कृत—वेदनीय नामाकर्म सो घातिया कर्मवत मोहनीय कर्म का भेद जो रति अरति तिनके उदय काल कर ही जीव को घाते, सुख दुख स्वरूप साता असाता कौं कारण इन्द्रियन का विषय तिनका अनुभव करवाय घात करे है।

कुछ समय तक किसी एक शरीर में जीव को ठहराये रखना यह आयु कर्म का काम है, किसी प्रकार का शरीर प्राप्त कराना यह नाम कर्म का काम है। ऊँच-नीच भव वा ऊँच नीच गति प्राप्त कराना यह गोत्र कर्म का काम है।

इस प्रकार इन आठ कर्मों के कार्य को जान लेने पर यह बात साफ़ हो जाती है, कि कर्मों का जो कुछ भी ज़ोर चलता है वह उस ही पर चलता है जिसके वे कर्म होते हैं। कर्म करने वाले जीव के सिवाय अन्य किसी भी जीव पर वा उसके शरीर के सिवाय अन्य किसी भी पुद्गल पदार्थ पर उनका कोई अधिकार नहीं होता है।

निमित्त कारण

संसार में अनन्तानन्त जीव और हज़ारों लाखों ग्रह तारे नक्षत्र और आग पानी हवा मिट्टी आदिक अनन्त पुद्गल पदार्थ भरे पड़े हैं, जो अपने अपने स्वभावानुसार अपना-अपना काम करते रहते हैं। उसी संसार में हम भी रहते हैं, हमारा और इन सब जीव और अजीव

पदार्थों का संयोग इसी तरह हो जाता है जिस तरह रात को बसेरे के लिये एक पेड़ पर आये हुए पक्षियों का वा एक सराय में इकट्ठे हुए मुसाफ़िरों का—

पक्षियों वा मुसाफ़िरों का यह सब संयोग एक पेड़ पर आ बैठने वा एक सराय में आकर ठहरने के कारण ही होता है, कोई किसी दूसरे के कर्मों से खिंचा हुआ आकर इकट्ठा नहीं होता है न कोई किसी दूसरे के कर्मों से खिंच ही सकता है। इस ही अचानक क्षण भर के संयोग में हम किसी से राग कर लेते हैं और किसी से द्वेष, फिर इसी रागद्वेष के कारण उनके अनेक प्रकार के परिवर्तनों, उनके सुख और दुःखों को अपना सुख और दुःख मान कर सुखी और दुःखी होने लग जाते हैं। इसी प्रकार जीव का अपने कुटम्बियों नगर-निवासियों और देशवासियों से संयोग और वियोग होता रहता है, ऐसा ही जीवों का यह संयोग संसार की अनेकानेक निर्जीव वस्तुओं से भी होता रहता है।

एक कामी पुरुष बहुत दिन पीछे रात को अपनी स्त्री से मिलता है और चाहता है कि रात लम्बी होजाय इसी कारण नगर का घन्टा बजने पर झुंझलाता है कि क्यों ऐसी जल्दी २ घन्टा बजाया जा रहा है; फिर दिन में जब अपनी प्यारी स्त्री से विछोहा रहता है तो तड़फता है कि क्यों देर देर में घन्टा बज रहा है। इसी को किसी कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है—

कल शबेवस्ल * में क्या जल्द बजें थी घड़ियां।
आज क्या मरगये घड़ियाल बजाने वाले॥

इसी प्रकार कभी रात होती है कभी दिन, कभी चांदनी होती है कभी अंधेरी, मौसमें बदलती हैं, जाड़ा पड़ता है, गर्मी होती है, पानी बरसता है, बादल होता है, धूप निकलती है, हवा कभी ठन्डी चलती है, कभी गर्म, नदियां बहती हैं, पानी का बहाव

* मिलाप की रात

आता है, अन्य भी अनेक प्रकार के अलटन-पलटन होते रहते हैं। संसार का यह सारा चक्र हमारे कर्मों के आधार नहीं चल रहा है, किन्तु घड़ियाल के घन्टों की तरह सब कार्य संसार की अनन्तानन्त वस्तुओं के अपने अपने स्वभाव के अनुसार ही हो रहा है। परन्तु हम अपनी इच्छा के अनुसार कभी रात चाहते हैं कभी दिन, कभी जाड़ा चाहते हैं कभी गर्मी, कभी बादल चाहते हैं, कभी धूप, कभी वर्षा चाहते हैं कभी सूखा। इसी प्रकार संसार के अन्य भी सभी कामों को अपनी इच्छा के अनुसार ही होते रहना चाहते हैं, परन्तु यह सारा संसार हमारे आधीन न होनेसे जब यह कार्य हमारे अनुसार नहीं होते हैं तो, हम दुःखी होते हैं और अपने भाग्य व कर्मों को ही दोष देने लग जाते हैं। किन्तु इसमें हमारे कर्मोंका क्या दोष? भूल तो हमारी है जो हम सारे संसार को, जो न हमारे आधीन है न हमारे कर्मों के ही आधीन, अपने ही अनुकूल चलाना चाहते हैं, नहीं चलता है तो दुःखी होते हैं।

रेलमें सफ़र करते समय इधर उधरसे आ-आकर अनेक मुसाफ़िर बैठते रहते हैं, कोई उतरता है कोई चढ़ता है, यों ही तांतासा लगा रहता है—तरह तरह के पुरुषोंसे संयोग होता रहता है, किसीसे दुख मिलता है, किसीसे सुख। कोई बीमार है, हरदम खांसता है थूकता है, छींकता है, जिससे हमको दुख होता है। किसी के शरीर और कपड़ों में बू आरही है, जिससे हमारा नाक फटा जा रहा है; कोई सुगन्ध लगाये हुये हैं, जिसकी महक से जी ख़ुश होता है; कोई सुन्दर गाना गाता है, कोई दूसरे मुसाफ़िरों से लड़ रहा है, इन सब ही के भले बुरे कृत्यों से कुछ न कुछ दुख सुख हमको भी भोगना ही पड़ता है। कारण इसका एकमात्र यह ही है कि रेल में सफ़र करने के कारण हमारा उनका संयोग हो गया है। हमारे कर्म हमको दुख सुख देने के वास्ते उनको उनके घरों से खैंचकर नहीं ले आये हैं, हमारी ही तरह वह सब भी अपनी २

ज़रूरतों के कारण ही यहां रेल में सफ़र करने को आये हैं। हमारे कर्मों का तो कुछ भी ज़ोर उन पर नहीं चल सकता है और न उनके कर्मों का कुछ ज़ोर हमारे ऊपर ही हो सकता है।

इस ही प्रकार नरक स्वर्ग आदि अनेक गतियों से आ आकर जीव एक कुटम्ब में, एक नगर में और एक देशमें इकट्ठे हो जाते हैं, वह भी सब अपने अपने कर्मानुसार ही आ-आ कर जन्म लेते हैं, हमारे कर्म उनको खैंच कर नहीं ला सकते हैं। रेलके मुसाफ़िरों की तरह एक स्थान में इकट्ठा होकर रहने के संयोग से उनके द्वारा भी हमारा अनेक प्रकार का बिगाड़ संवार होता है जो हमें झेलना ही पड़ता है। दृष्टान्त रूप मान लीजिये कि एक हमारे पड़ौसी के यहां बेटे का विवाह है। जिसके कारण रात दिन गाजा बाजा, गाना नाचना, खाना खिलाना आदि अनेक उत्सव होते रहते हैं, उनके इस शोर-गुलसे रातको हमको नींद भर सोना नहीं मिलता है, जिससे हम दुखी होते हैं; तो क्या हमारे कर्मों ने ही हमको यह थोड़ा सा दुख पहुँचाने के वास्ते पड़ौसी के यहां उसके बेटे का विवाह रचवा दिया है?

ऐसा ही दूसरा दृष्टान्त यह हो सकता है कि पड़ौसीके यहां कोई जवान मौत हो गई है, जिसमें उसकी जवान विधवा रात दिन विलाप करती है, उसके इस विलापसे हमारी नींदमें ख़लल पड़ रहा है, तो क्या हमारे कर्मों ने ही हमारी नींदमें ख़राबी डालनेके वास्ते जवान पड़ौसी को मार कर उसकी जवान स्त्रीको विधवा बनाया है? नहीं, ऐसा मानना तो बिलकुल ही हंसी की बात होगी। असल बात तो यह ही माननी पड़ेगी कि ब्याह वालेके यहां भी उसके अपने ही कर्मों से विवह प्रारम्भ हुआ और मरने वाले के यहां भी उसके अपने ही कर्मोंसे मौत हुई, परन्तु पड़ौसमें रहने के संयोग से वह हमारी नींद में ख़लल डालनेके निमित्त ज़रूर हो गये।

इसको और भी ज़्यादा स्पष्ट करनेके लिये दूसरा दृष्टान्त यह हो

सकता है कि कुछ वर्ष पहले यहां हिन्दुस्तान में लाखों मन चींनी जावा से आती थी और खूब मंहगी बिकती थी, जिससे हर साल करोड़ों रुपया हिन्दुस्तान का जावा चला जाता था, हिन्दुस्तान कंगाल और वह मालामाल होता जाता था, लेकिन अब कुछ सालसे हिंदुस्तानियों ने यहां ही चीनी बनानी शुरू कर दी है, जिससे यहां चीनी भी सस्ती हो गई है और रुपया भी यहां का यहां ही रहने लग गया है, परन्तु जावावालोंकी चीनी की बिक्री बन्द होनेसे उनके सब कारखाने पट होगये हैं, तो क्या जावावालों के खोटे कर्मोंने ही जावावालों को हानि पहुँचानेके वास्ते हिन्दुस्तानवालों से चीनी बनानेके कारखाने खुलवा दिये हैं? नहीं ऐसा नहीं माना जासकता है, यहां वालोंने जो कारखाने खोले हैं वह तो अपनेही कर्मोंसे वा अपने ही पुरुषार्थसे खोले हैं, जावावालों के खोटे कर्मों से वह क्यों खोलते, हां कारखाने खोलकर जावावालों को नुक़सान पहुँचाने के निमित्त कारण वह ज़रूर हो गये हैं।

अकाल मृत्यु

निमित्त कारण जीवों को कैसा नाच नचाता है और क्या-से-क्या कर डालता है, यह बात अकाल मृत्युके कथनसे बहुत अच्छी तरह समझ में आसकती है। कुंद कुंद स्वामी ने भाव पाहुड़ की गाथा नं० २५, २६ में अकाल-मृत्यु का कथन इस प्रकार किया है—हे जीव! मनुष्य और तिर्यंच पर्यायमें तूने अनेक बार अकाल मृत्यु के द्वारा महा दुख उठाया है, विष के खाने से वा विषैले जानवरों के काटे जानेसे, किसी असह्य दुखके आपड़नेसे, अधिक खून निकल जानेसे, किसी भारी भयसे, हतियार के घातसे, महा संक्लेशरूप परिणामों के होनेसे—अर्थात् अधिक शोक माननेसे वा अधिक क्रोध करने से—आहार न मिलनेसे, सांसके रुकनेसे, बरफ़में गलजानेसे, आगमें जलजानेसे, पानीमें डूबजानेसे, वृक्ष वा अन्य किसी

ऊंचे स्थानसे गिरपड़नेसे, शरीरमें चोट लगने से, अन्य भी अनेक कारणसे अकाल मृत्यु होती रहती है। इसी प्रकार गोमट्टसार कर्मकांड की निम्न गाथा ५७ में भी विष, रक्त-क्षय, भय, शस्त्रघात, महावेदना, सांस रुकना, आहार न मिलना आदि कारणोंसे बंधी आयुका छीजना अर्थात् समय से पहले ही मरण होजाना लिखा है।

विसवेयणरत्तक्खयभयसत्थग्गहणसंकिलेसेहिं ।
उस्सासाहाराणं णिरोहदो छिज्जदे आऊ ॥५७॥

तत्त्वार्थसूत्र अध्याय २ सूत्र ५३ का भाष्य करते हुए श्री अकलंक स्वामी ने राजवार्तिक में और विद्यानन्द स्वामी ने श्लोक वार्तिकमें मरणकाल से पहले मृत्यु का हो जाना सिद्ध किया है और लिखा है कि अकाल मृत्यु के रोकने के वास्ते आयुर्वेद में रसायन आदिक बर्तना लिखा है जिससे भी अकाल मृत्यु सिद्ध है। इस ही प्रकार अन्य शारीरिक रोगों के दूर करने के वास्ते भी औषधि आदिक वाह्य निमित्त कारणों का जुटाना ज़रूरी बताया है। भगवती आराधनासार गाथा ८२३ का अर्थ करते हुये पंडित सदासुख जी ने अकाल मृत्यु का वर्णन इस प्रकार किया है—

कितनेक लोग ऐसे कहे हैं, आयु का स्थिति-बंध किया सो नहीं छिदे है, तिनकूं उत्तर कहै हैं—जो आयु नहीं ही छिदता तो विष भक्षण तैं कौन पराङ्मुख होता अर उखाल (कै कराना) विष पर किस वास्ते देते, अर शस्त्र का घाततैं भय कौन वास्ते करते अर सर्प, हस्ती, सिंह, दुष्ट मनुष्यादिकन को दूरहीतैं कैसे परिहार करते; अर नदी समुन्द्र कूप वापिका तथा अग्नि की ज्वाला में पतन तैं कौन भयभीत होता। जो आयु पूर्ण हुआ बिना मरण ही नहीं तो रोगादिक का इलाज काहेकूं करते, तातैं यह निश्चय जानहुं—जो आयु

का घात का बाह्य निमित्त मिल जाय तत्काल आयु का घात होय ही जाय, ईमें संशय नहीं है, बहुर आयु कर्म की नाईं अन्य कर्म भी जो बाह्य निमित्त परिपूर्ण मिल जाय तो उदय हो ही जाय, नीम-भक्षण करैगा ताके तत्काल असाता वेदनीय उदय आवे ही है, मिश्री इत्यादिक इष्ट वस्तु भक्षण करे ताके सातावेदनीय उदय आवे ही है तथा वस्त्रादिक आड़े आ जायं तो चक्षु द्वारे मतिज्ञान रुक जाय, कर्ण में डाटा देवें तो कर्ण द्वारे मतिज्ञान रुक जाय, ऐसे ही अन्य इन्द्रियन के द्वारे ज्ञान रुके ही है; नशा आदिक द्रव्यतें श्रुत-ज्ञान रुक जाय है, भैंस की दही लस्सन आदिक द्रव्य के भक्षण तैं निद्रा की तीव्रता होय ही है, कषायण के कारण मिले कषायण की उदीर्णा होवे ही है, पुरुष का शरीरकूं तथा स्त्री का शरीरकूं स्पर्शनादिक कर वेद की उदीर्णातैं काम की वेदना प्रज्वलित होय हो है, अरति कर्मकूं इष्टवियोग, शोक कर्मकूं सुपुत्रादिक का मरण इत्यादिक कर्म की उदय उदीर्णादिककूं करे ही है। तातैं ऐसा तात्पर्य जानना, इस जीव के अनादि का कर्म-संतान चला आवे है, अर समय समय नवीन नवीन वन्ध होय हैं, समय समय पुरातन कर्म रस देय देय निर्जरे हैं, सो जैसा बाह्य, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, मिल जाय तैसा उदय में आ जाय, तथा उदीर्णा होय उत्कट रस देवे। अर जो कोऊ या कहै, कर्म करैगा सो होयगा, तो कर्म तो या जीव के सर्व ही पाप पुण्य सत्ता में मौजूद हैं, जैसा जैसा वाह्य निमित्त प्रबल मिलेगा, तैसा तैसा उदय आवेगा, और जो बाह्य निमित्त कर्म के उदय को कारण नाहीं, तो दीक्षा लेना, शिक्षा देना तपश्चरण करना सत्संगति करना, वाणिज्य व्यवहार करना, राज सेवादि करना, खेती करना, औषधि सेवन करना, इत्यादिक सर्व व्यवहार का लोप हो जाय, तातैं ऐसी भावनाकूं परमागमते निश्चय करना जो आयु कर्म का

परमाणु तो साठ वर्ष पर्यंत समय समय आवा जोग्य निषेकनि में बांटाने प्राप्त भया होय अर बीच में बीस बरस की अवस्था ही में जो विष शस्त्रादिक का निमित्त मिल जाय तो चालीस बरस पर्यंत जो कर्म का निषेक समय समय निर्जरता सो अन्तर्मुहूर्त में उदीर्णा में प्राप्त होय इकट्ठा नाशनें प्राप्त होय, सो अकाल मरण है।"

भावार्थ इस कथन का यह है कि जिस प्रकार अंगीठी में जलते हुए कोयले भर दिये जावें तो साधारण रीति से मन्द-मन्द तौर पर जलते हुए वे कोयले एक घंटे तक जलते रहेंगे, कोयलों के थोड़े थोड़े कण हरदम जल जल कर राख होते रहेंगे और एक घंटे में सब ही जलकर खतम हो जायेंगे, परन्तु अगर तेज़ हवा चलने लगे या कोई ज़ोर से पंखा झलने लगे, या फूंक मारने लगे या उन कोयलों पर मिट्टी का तेल डाल दे, तो वे कोयले एकदम भड़क उठेंगे और दस पांच मिनट में ही जलकर राख हो जायेंगे। इस ही प्रकार हरएक कर्म का भी बंधा हुआ समय होता है, उस बंधे हुए समय तक वह कर्म साधारण रीति से मन्द मन्द गति से अपना असर दिखाता हुआ हरदम कण कण नाश होता रहता है, समय पूरा होने तक वह सब खतम हो जाता है, इस ही को कर्मों का उदय होना, झड़ जाना या निर्जरा होते रहना कहते हैं। परन्तु अगर किसी ज़ोरदार निमित्त कारण से कर्म का वह हिस्सा भी जो देर में उदय होता, जल्दी उदय में आ जाय तो उसे उदीर्णा कहते हैं। दृष्टांत रूप से किसी की आयु साठ बरस की है लेकिन बीस बरस की ही अवस्था में उसको सांप ने काट खाया या किसी ने तलवार से सिर काट दिया; जिससे वह मर गया तो यह समझना चाहिये कि उसकी बाक़ी बची हुई चालीस बरस की आयु की उदीर्णा होगई, ऐसे ही अन्य भी सभी कर्मों

को उदीर्णा निमित्त कारणों के मिलने से होती रहती है।

अकाल मृत्यु के इस कथन से यह तो ज़ाहिर ही है कि जिस जीव की आयु ६० वर्ष की थी, उसको उसके आयु कर्म ने ही २० वर्ष की उमर में नहीं मार डाला है, अर्थात् उसके आयु कर्म ने ही ऐसा कारण नहीं मिलाया है, जिससे वह २० वर्ष की ही आयु में मर गया। आयुकर्म का ज़ोर चलता तो वह तो उसको ६० वर्ष तक ज़िन्दा रखता; परन्तु निमित्त कारण के मुक़ाबले में आयुकर्म की कुछ न चल सकी; तब ही तो ४० वर्ष पहले ही उसकी मृत्यु हो गई। जब आयु जैसे महा-प्रबल कर्म का यह हाल है तब अन्य कर्मों की तो मजाल ही क्या है, जो निमित्त कारणों का मुक़ाबला कर सकें—उनको अपना कार्य करने से रोक सकें—तब ही तो कोई ज़बरदस्त आदमी किसी को जान से मार सकता है, लाठी जूते थप्पड़ से भी पीट सकता है, उसका रहने का मकान भी छीन सकता है, धन सम्पत्ति भी लूट सकता है, उसकी स्त्री-पुत्र को भी उठा कर ले जा सकता है, चोरी भी कर सकता है, अन्य भी अनेक कार के उपद्रव मचा सकता है, कर्मों में यह शक्ति नहीं है कि इन उपद्रवों को रोक दें। कर्मों में यह शक्ति होती तो संसार में ऐसे उपद्रव ही क्यों होने पाते? परन्तु संसार में तो बड़ा हाहाकार मचा हुआ है, जीव ही जीव को खा रहा है, सब ही जीव एक दूसरे से भयभीत होकर अपनी जान बचाते फिर रहे हैं, चूहे बिल्ली के डर से इधर-उधर छिपते फिरते हैं, बिल्ली कुत्ते से डर कर दुबकती फिरती है, मक्खियों को फंसाने के लिए मकड़ी ने अलग जाल फैला रक्खा है, चोर डाकू अलग ताक लगा रहे हैं, दूकानदार ग्राहक को लूटने की धुन में हैं और ग्राहक दूकानदार को ही ठगने की फ़िकर में हैं, धोखा, फ़रेब जाल-साज़ी का बाज़ार गरम हो रहा है, एक को एक हड़प करना

चाह रहा है। इसी से अपने अपने कर्मों के भरोसे न रहकर सब कोई पूरी पूरी सावधानी के साथ अपने अपने जान माल की रक्षा का प्रबन्ध करता है, चौकी पहरा लगाता है, अड़ौसी पड़ौसी और नगर निवासियों का गुट्ट मिलाकर हर कोई एक दूसरे की रक्षा करने के लिये तैयार रहता है, रक्षा के वास्ते ही राज्य का प्रबन्ध किया जाता है, और बड़ा भारी कर राज्य को दिया जाता है।

कर्मों का काम निमित्त मिलाना नहीं है

ऊपर के शास्त्रीय कथन से यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि बुरे वा भले किसी भी प्रकार के निमित्त मिलाने का, दुख वा सुखकी सामग्री जुटानेका काम कर्मोंका नहीं है; तब ही तो प्रत्येक मनुष्य कर्मोंके भरोसे न बैठकर अपने सुखकी सामग्री जुटानेके वास्ते रातदिन पुरुषार्थ करता है, खेती, सिपाहीगिरी, कारीगरी, दस्तकारी, दुकानदारी, मिहनत-मज़दूरी, नौकरी-चाकरी आदि सब ही प्रकारके धंधोंमें लगा रह कर खून पसीना एक करता रहता है, यहां तक कि अपने आराम को भी भुला देना पड़ता है और तबही ज्यों त्यों करके अपनी जीवन-यात्रा पूरी करनेके योग्य होता है। जो मनुष्य पुरुषार्थ नहीं करता है, कर्मोंके ही भरोसे पड़ा रहता है वह नालायक़ समझा जाता है और तिरस्कारकी दृष्टिसे देखा जाता है।

उपरके शास्त्रीय कथनमें साफ़ लिखा है कि कसीने नीमके कड़वे पत्ते चबाये, जिससे उसका मुंह कड़वा होगया तो उसके असातावेदनीय कर्मने उदय होकर उसका जी बुरा कर दिया अर्थात् उसको दुखका अनुभव करादिया और जब उसने मिठाई खाई, जिससे उसका मुंह मीठा हो गया, तो सातावेदनीय कर्मने उदय होकर उसका जी ख़ुश कर दिया, उसको सुखका अनुभव करा दिया। भावार्थ—कड़वी-मीठी

वस्तु का जुटाना कर्मों का काम नहीं है, यह काम तो मनुष्य के स्वयं अपने पुरुषार्थ का वा दूसरों के द्वारा मिलाये हुए निमित्त का ही है। कर्म का काम तो एकमात्र इतना ही है कि जैसा निमित्त मिले उसके अनुसार जीव को सुखी वा दुखी करदे।

इस एक ही संसार में अनन्ते जीवों और अनन्ते पुद्गल पदार्थों का निवास है और वे सब अपना २ काम करते रहते हैं, जिससे आपस में उनकी मुठभेड़ होती रहती है—रेल व सराय के मुसाफ़िरों की तरह संयोग-वियोग होता ही रहता है। एक का कर्म किसी दूसरे को खींच नहीं लाता है और न खींचकर ला ही सकता है।

कर्मों का काम तो जीव में एक प्रकार का बिगाड़ वा रोग पैदा करते रहना ही है। रोगी को जब रोग के कारण जाड़ा लगता है तो ठंडी हवा बुरी लगती है, परन्तु उसका रोग उसको दुख देने के वास्ते ठंडी हवा नहीं चलाता है, न ठंडी हवा चलाने की रोग में सामर्थ्य ही होती है, रोग का तो सिर्फ़ इतना ही काम है कि ठंडी हवा लगे तो रोगी को दुख हो, फिर जब रोगी को तेज़ बुख़ार चढ़ जाता है तो ठंडी हवा अच्छी और गर्म हवा बुरी लगने लगती है, तब भी उसके रोग में यह सामर्थ्य नहीं होती है कि उसको दुख देने के वास्ते गर्म हवा चला दे। इसी प्रकार कर्म भी जीव को सुख-दुख पहुँचाने के वास्ते संसार के जीवों तथा पुद्गल पदार्थों को खींचकर उसके पास नहीं लाते हैं, उनका तो इतना ही काम है कि उसके अन्दर ऐसा भाव पैदा करदें जिससे वह किसी चीज़ के मिलने से सुख मानने लगे और किसी से दुख।

कफ़ के रोगी को मिठाई खाने की बहुत ही प्रबल इच्छा होती है, मिठाई खाने में सुख मानता है और खटाई

से दुख। पित्त का रोगी खटाई से खुश होता है और मिठाई से दुखी। परन्तु रोगी के रोग का यह काम नहीं है कि वह उसको सुखी वा दुखी करने को कहीं से मिठाई या खटाई लाकर उसे खिलादे। इसी प्रकार कर्म भी जीवों में तरह तरह की विषय और कषाय पैदा करते रहते हैं; परन्तु उनका यह काम नहीं है कि जीव में जैसी विषय या कषाय पैदा की है उसके अनुकूल या प्रतिकूल वस्तुयें भी इधर उधर से खींच कर उसको लादें।

क्या बिल्ली को भूख लगने पर उसके ही शुभ कर्म चूहों को बिल में से बाहर निकाल कर फिराने लगते हैं, जिससे बिल्ली उनको आसानी से पकड़ कर खाले, या चूहे के खोटे कर्म ही बिल्ली को पकड़ कर लाते हैं, जिससे वह चूहों को मार डाले? यह बात ठीक है तो जब कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य को मार डालता है तो मारने वाला क्यों पकड़ा जाता है और क्यों अपराधी ठहराया जाता है? उसको तो मरने वाले के खोटे कर्मों ने ही मारने के वास्ते मजबूर किया था, तब उस बेचारे का क्या क़सूर? परन्तु ऐसा मानने से तो संसार का सब ही व्यवहार गड़बड़ में पड़ जाता है और राज्य का भी कोई प्रबन्ध नहीं रहता है। ऐसी हालत में हिंसक, शिकारी, चोर, डाकू, लुटेरा, धोकेबाज़ ज़ालिम, जार, जालसाज़, बदमाश, आदि कोई भी अपराधी नहीं ठहरता। जो ज़ुल्म किसी पर हुआ है वह सब जब उस ही के कर्मों से हुआ—जब ख़ुद उसी के कर्म चोर डाकू व अन्य किसी ज़ालिम को ज़ुल्म करने के वास्ते खींचकर लाते हैं, तब ज़ुल्म करने वाले का क्या क़सूर? वह क्यों पकड़ा जावे और क्यों सज़ा पावे?

इसी प्रकार यह बात किसी तरह भी नहीं मानी जा सकती है कि भला बुरा जो कुछ भी होता है वह सब अपने

ही कर्मों से होता है, अपने ही कर्म सब प्रकार के निमित्त कारणों को जुटाते हैं। ऐसा हरगिज़ नहीं है और न ऐसा माना ही जा सकता है, कर्म जिसके किये हुवे हों उनका असर उस ही पर हो सकता है, न कि दूसरों पर, कर्म करने वाले पर उसके कर्म चाहे जो ज़ोर चलावें, चाहे जिस तरह नचावें पर दूसरों पर तो वह कुछ ज़ोर नहीं कर सकते हैं, दूसरों से तो उलटा सीधा वह कुछ कार्य नहीं करा सकते हैं, कोई पैदा होता है तो अपने कर्मों से, मरता है तो अपने कर्मों से, दूसरों के शुभकर्म न किसी को खींच लाकर उसके यहां पैदा करा सकते हैं और न दूसरों के अशुभ कर्म किसी को मारकर उससे उसका वियोग ही करा सकते हैं। संयोग-वियोग तो सराय के मुसाफिरों के मेल के समान एक हो संसार में रहने के कारण आप से आप ही होता रहता और यह ही संयोग वियोग अच्छा बुरा निमित्त बन जाता है। अच्छे अच्छे निमित्तों के मिलने से जीव का उद्धार हो जाता है, जैसे कि सद्गुरुओं के उपदेश से व सत्शास्त्रों के पढ़ने से जीव का अनादि कालीन मिथ्यात्व छूटकर सम्यक् श्रद्धान की प्राप्ति हो जाती है; वीतराग भगवान् का वीतराग मुद्रा को देखकर, वीतराग भगवान् के गुणों को याद करने से, गुणगानरूप स्तुति करने से और वीतरागता का उपदेश सुनने से सम्यक् चारित्र धारण करने का उत्साह पैदा होता है, जिससे सत्पथ पर लगकर जीव अपना कल्याण-कर लेता है-सदा के लिये दुखों से छूट जाता है। खोटे निमित्तों के मिलने से जीव विषय-कषायों में फंसकर अपना सत्यानाश कर लेता है, कर्मों की कड़ी ज़ंजीरों में बन्धकर नरक और तिर्यञ्चगति के दुख उठाता है।

अच्छे निमित्तों को मिलाना और खोटे निमित्तों से बचना ही पुरुषार्थ है

अनादि कालसे ही विषय-कषायों में फंसा हुआ यह जीव विषय-कषायों का अभ्यासी हो रहा है, इसही कारण विषय-कषायों को भड़काने वाले निमित्तोंका असर उसपर बहुत जल्द होता है, विषय-कषाय की बातोंके ग्रहण करनेके लिये यह हर वक्त तैय्यार रहता है। इसके विपरीत विषय-कषायोंको रोकने, दबाने, क़ाबूमें रखने अथवा सर्वथा छोड़देने की बात उसको बिलकुल ही अनोखी मालूम होती है और इसीसे यह बहुत ही कठिनताके साथ हृदयमें बैठती है। ऐसी हालतमें बड़ी सावधानी के साथ खोटे निमित्तोंसे बचते रहनेकी, उनको अपने पास तक भी न आने देनेकी और पूरी कोशिशके साथ उत्तम उत्तम निमित्तोंको मिलाते रहनेकी बहुत ही ज़्यादा ज़रूरत है। खोटे निमित्त जीवके उससे भी अधिक शत्रु हैं; जितने कि उसके खोटे कर्म क्योंकि ये खोटे निमित्त ही तो सोती कषायोंको जगा कर जीवसे महा खोटे कर्म कराते हैं और उसका सत्यानाश कर डालते हैं। इस ही कारण शास्त्रोंमें महामुनियों तकको भी खोटे निमित्तोंसे बचते रहनेकी भारी ताकीद की गई है, जिसके कुछ नमूने इस प्रकार हैं।

भगवती आराधनासार के नमूने—

गाथा १८९—एकान्तमें माता, पुत्री, बहनको देखकर भी काम भड़क उठता है। गाथा १२०९—जैसे कोई समुद्रमें घुसे और भीगे नहीं तो बड़ा आश्चर्य है, ऐसे ही यदि कोई विषयोंके स्थानमें रहे और लिप्त न हो तो आश्चर्य ही है। गाथा ३३५—हे मुनि! अग्नि समान और विष समान जो आर्यिकाओं का संग है उसको त्याग। गाथा ३३८—यदि अपनी बुद्धि स्थिर भी हो, तो भी आर्यिकाकी संगति से इस प्रकार चित्त पिघल जाता है जैसे अग्निसे घी। गाथा १०८९—जैसे किसी को शराब पीता देखकर वा शराब की बातें सुनकर शराबी

को शराब पीने की भड़क उत्पन्न हो जाती है, उसही प्रकार मोही पुरुष विषयोंको देखकर वा उनकी बात सुनकर विषयों की अभिलाषा करने लगजाता है।

मूलाचार के नमूने

गाथा ९५४—संगतिसे ही सम्यक्त्व आदि की शुद्धि बढ़ती है और संगतिसे ही नष्ट होती है, जैसे कि कमलकी संगतिसे पानी सुगंधित हो जाता है, और अग्निकी संगतिसे गरम। गाथा ९९०— काठ की बनी हुई स्त्रीसे भी डरना चाहिये, क्योंकि निमित्त कारण के मिलने से चित्त चलायमान होता है।

निमित्त कारण के मिलने से कर्म किस तरह भड़क उठते हैं इसका उल्लेख गोम्मट्टसार में संज्ञाओं के वर्णन में इस प्रकार मिलता है।

गाथा १३३—जिसके निमित्त से भारी दु:ख प्राप्त हो ऐसी वांच्छा को संज्ञा कहते हैं। आहार, भय, मैथुन और परिग्रह यह चार संज्ञायें हैं।

गाथा १३४—आहार के देखने वा याद करने से पेट भरा हुआ न होने पर असातावेदनीय कर्म की उदय उदीरणा होकर आहार की इच्छा पैदा होती है।

गाथा १३५—किसी भयंकर पदार्थ के देखने या याद करने से शक्ति के कम होने पर भयकर्म की उदय उदीरणा होकर भय उत्पन्न होता है।

गाथा १३६ स्वादिष्ट, गरिष्ट, रसयुक्त भोजन करने से, कुशील सेवन करने वा याद करने से वेद कर्मकी उदय उदीर्णा होकर काम-भोगकी इच्छा होती है।

गाथा १३७—पदार्थोंके देखने वा याद करनेसे लोभ कर्मकी उदय-उदीरणा होकर परिग्रहकी इच्छा होती है।

निमित्त मिलने पर ही कर्म फल देते हैं

गोमट्टसार के इस कथन का सार यही है कि निमित्त कारणों के मिलने से कर्म उदय में आ जाते हैं, कषाय भड़काने का अपना कार्य करने लग जाते हैं। इस बात को अच्छी तरह समझा देने के लिये हम फिर जलते हुए कोयलों से भरी हुई अंगोठो का दृष्टान्त देते हैं, जिस तरह अंगीठो में भरे हुए कोयले जब तक अच्छी तरह आग नहीं पकड़ लेते हैं तब तक वह अंगीठी पर रखी हुई चीज़ को पकाना शुरू नहीं करते हैं, उसी तरह नवीन कर्म भी जब तक पुराने कर्मों से घुलमिल नहीं जाते हैं तबतक वे भी फल देना शुरू नहीं करते हैं, घुलने मिलने में जो समय लगता है उसको आबाधा काल कहते हैं। इसके बाद क्षण क्षण में जिस तरह कोयलों का कुछ कुछ भाग जल-जल कर राख होता रहता है उसी तरह कर्मों का भी एक-एक भाग क्षण क्षण में झड़ता रहता है, इसही को कर्मों की निर्जरा होते रहना कहते हैं।

अंगीठी पर कोई चीज़ पकाने को रखी हो, या न रखी हो तो भी अंगीठी के कोयलों का थोड़ा थोड़ा हिस्सा जल जलकर राख ज़रूर होता रहेगा। इस ही प्रकार कर्मों को भी अपना भला बुरा फल देने के वास्ते कोई निमित्ति मिले या न मिले तो भी क्षण क्षण में उनका एक एक हिस्सा ज़रूर झड़ता रहेगा। फल देने योग्य कोई निमित्त नहीं मिलेगा तो बिना फल दिये ही अर्थात् बिना उदय में आये ही उस हिस्से की निर्जरा होती रहेगी। जिस कर्म की जो स्थिति बंधी होगी अर्थात् जितने काल तक किसी कर्म के क़ायम रहने की मर्यादा होगी उतने काल तक बराबर उस कर्म के एक एक हिस्से की निर्जरा क्षण क्षण में ज़रूर होती रहेगी।

परन्तु जिस प्रकार अंगीठी में मिट्टी का तेल पड़ जाने से वा तेज़ हवा के लगने से अंगीठी के कोयले एकदम ही भबक उठते हैं, जिससे कोयलों का बहुत सा हिस्सा एकदम जलकर राख हो जाता है, उसी प्रकार किसी भारी निमित्त कारण के मिलने पर कर्मों का भी बहुत बड़ा हिस्सा एकदम भड़क उठता है, कर्मों का जो हिस्सा बहुत देर में उदय में आना था, वह भी उसी दम उदय में आ जाता है। इस ही को उदीरणा कहते हैं।

कर्मों का कोई हिस्सा बिना फल दिए भी कैसे झड़ता रहता है, इसको समझने के लिये यह जानना चाहिए कि, साता और असाता अर्थात् सुख देने वाला और दुख देने वाला ये दोनों कर्म एक साथ फल नहीं दे सकते हैं। जिस समय साता का उदय होगा उस समय असाता कर्म बेकार रहेगा और जिस समय असाता का उदय होगा उस समय साता कर्म बेकार रहेगा। परन्तु कर्मों का एक एक हिस्सा तो क्षण क्षण में ज़रूर ही झड़ता रहता है, इस कारण सुख का निमित्त मिलने पर जिस समय साता कर्म फल दे रहा होगा उस समय असाता कर्म बिना फल दिये ही झड़ता रहेगा और जब दुख का निमित्त कारण मिलने पर असाता कर्म फल दे रहा होगा उस समय साता कर्म बिना फल दिए ही झड़ता रहेगा। दोनों कर्म जब एक साथ काम नहीं कर सकते हैं तब एक कर्म को तो ज़रूर ही बेकार रहकर झड़ना पड़ेगा। इस ही तरह रति और अरति अर्थात् प्यार और तिरस्कार हास्य और शोक अर्थात् खुशी और रंज दोनों एक साथ फल नहीं दे सकते हैं—एक समय में एक ही कर्म फल देगा और दूसरे को बिना फल दिये ही झड़ना पड़ेगा। निद्रा कर्म को इखिये क़ायदे के बमूजिब उसका भी एक एक हिस्सा क्षण क्षण में झड़ता रहता है, परन्तु जब तक

हम सोते हैं तब तक तो बेशक निद्रा कर्म अपना फल देकर ही झड़ता है, लेकिन जितने समय तक हम जागते हैं, उतने समय तक तो निद्रा कर्म को बेकार ही झड़ता रहना पड़ता है। इस ही प्रकार अन्य भी अनेक दृष्टांत दिए जा सकते हैं, जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस समय कर्म को अपना फल देने का निमित्त मिलता है वह कर्म तो उस समय फल देकर ही खिरता है बाक़ी जिन कर्मों को निमित्त नहीं मिलता है वे सब बिना फल दिये ही खिरते रहते हैं।

भगवती आराधनासार की संस्कृत टीका में श्री अपराजितसूरि ने गाथा १७५४ के नीचे स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि 'कर्म उपादान हैं जिनको अपना फल देने के वास्ते द्रव्य क्षेत्र आदि निमित्त कारणों की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार आमका बीज मिट्टी पानी और हवा आदि का निमित्त पाकर ही वृक्ष बनता है और फल देता है, बिना निमित्त मिले हमारे बक्स में रक्खा हुआ वैसे ही बोदा होकर निकम्मा हो जाता है। इस ही प्रकार कर्म भी बिना निमित्त मिले कुछ भी फल नहीं दे सकते हैं, यूंही व्यर्थ ही झड़ जाते हैं। इस ही प्रकार गाथा १२२९ में नीचे लिखा है कि जब द्रव्य क्षेत्र, काल आदि मिलते हैं तब ही कर्म अपना फल आत्मा को देते हैं।' ऐसा ही गाथा १७४० के नीचे लिखा है। ऐसा ही मूलाराधना टीका में गाथा १७११ के नीचे लिखा है कि द्रव्य क्षेत्र आदि के आश्रय से कर्म का योग्यकाल में आत्मा को फल मिलना कर्म का उदय होना कहलाता है।

वास्तव में निमित्त कारण ही बलवान है, इसी से महामुनि गृहस्थाश्रम को छोड़ आबादी से दूर जंगल में चले जाते हैं। गृहस्थियों की आबादी में स्त्री पुरुषों के समूह में रागद्वेष और विषय कषाय का ही बाज़ार गरम

रहता है, हर तरफ़ उन्हीं का खेल देखने में आता है और उन्हीं की चर्चा रहती है। ऐसे लोगों के बीच में रह कर परिणामों का शुद्ध रहना—किंचित मात्र भी विचलित न होना—एक प्रकार असम्भव ही है, इसी कारण आत्म-कल्याण के इच्छुक महामुनि विषय कषाय उत्पन्न करने वाले निमित्त कारणों से बचने के वास्ते आबादी से दूर चले जाते हैं। उनके चले जाने पर आबादी उजड़ नहीं जाती, किन्तु वैसी ही बनी रहती है जैसा कि पहले थी। इससे साफ़ सिद्ध है कि यह आबादी उनके कर्मों की बनाई हुई नहीं थी, किन्तु उनके वास्ते निमित्त कारण ज़रूर थी, तब ही वे उसको छोड़ सके। उनके कर्मों की बनाई हुई होती तो उनके साथ जाती; क्योंकि जिन कर्मों ने उनके वास्ते आबादी का सामान बनाया हो, वे कर्म तो अभी उनके नाश नहीं हुए हैं, ज्यों के त्यों मौजूद हैं।

इस ही प्रकार बस्ती छोड़ कर जिस बन में जाकर वे रहते हैं, वहां भी शेर, भेड़िया आदिक पशु और डांस मच्छर आदि कीड़े-मकौड़े सब पहले से ही वास करते हैं और इन मुनियों के दूसरे बन में चले जाने पर भी उसी तरह वास करते रहेंगे। बन से आये हुये इन मुनियों को परिषह देने के वास्ते उनके कर्मों ने इनको पैदा नहीं कर दिया है। हां! मुनियों के यहां आने पर उनको परिषह पहुँचाने के निमित्त कारण वे ज़रूर बन गये हैं। दिन को कड़ी धूप का पड़ना, रात को ठंडी हवा का चलना, बारिश का बरसना, बरफ़ का पड़ना आदि भी जो कुछ अब हो रहा है वही इन मुनियों के आने से पहले भी होता था और जब ये मुनि दूसरे बन को चले जायेंगे तब भी होता रहेगा। इससे स्पष्ट सिद्ध है परिषह का यह सब सामान भी, मुनियों के कर्मों ने नहीं बनाया है किन्तु उनके यहां आने पर उनके

मुसाफ़िर की ख़ैर कहां ? वह बे-लगाम घोड़ा तो उल्टा सीधा भागकर मुसाफ़िर की हड्डी पसली तोड़कर ही दम लेगा। यही हाल गृहस्थी का है, जिसको महा उद्धत विषय-कषायों को भोगते हुए भी अपना गृहस्थ-जीवन व्यतीत करना होता है। वह भी अगर यह मानले कि जो कुछ होगा वह मेरे कर्मों का ही किया होगा, मेरे किये कुछ न हो सकेगा और ऐसा विचारकर वह अपने विषय-कषायों की बागडोर को बिल्कुल ही ढीली छोड़कर उनको उनके अनुसार ही चलने दे तो उसके तबाह होने में क्या किसी प्रकार का शक या शुबह हो सकता है ? गृहस्थी तो कुशल से तब ही रह सकती है जब अपने पुरुषार्थ पर पूरा भरोसा करके विषय कषायों की बागडोर को सावधानी के साथ थामकर उनको अपने अनुकूल ही चलाता रहे। यही उसका सद्‌गृहस्थीपन है, नहीं तो वह नीचातिनीच मनुष्य ही नहीं, किन्तु भयंकर राक्षस तथा हिंसक पशु बनकर अथवा विष्टा के कीड़े के समान गन्दगी में ही पड़ा रहकर अपना जन्म पूरा करेगा और मरकर नरक ही जायेगा। कर्मों को बलवान मानकर उनके आधीन हो जाने का यही तो एकमात्र कुफल है।

असल में पुरुषार्थ से ही मनुष्य का जीवन है और इसी से उसका मनुष्यत्व है। गृहस्थी का मुख्यकार्य कर्मों से उत्पन्न हुए महा उद्धत विषय-कषायों को पुरुषार्थ के बल से अपने रूप चलाने का ही तो है, और इस कार्य के लिए उसमें सामर्थ्य भी है। अपनी सामर्थ्य के बल पर वह तो इससे भी अधिक ऐसा ऐसा अद्भुत और चमत्कारी पुरुषार्थ कर दिखा रहा है कि स्वर्गों के देवों की बुद्धि भी जिसको देखकर अचम्भा करने लग जाती है। देखो यह पाँच फ़िट का छोटा सा मनुष्य ही तो आग, पानी, हवा, बिजली आदि सृष्टि के भयंकर पदार्थों को वश करके उनसे अपनी इच्छानुसार सर्वप्रकार की सेवायें लेने लग गया है, आग, पानी से भाप बनाकर उससे आटा पिसवाता है, लकड़ी चिरवाता है, पत्थर फुड़वाता है, हज़ारों मनुष्य और लाखों मन बोझ लादकर रेलगाड़ी खिंचवाता है—खिंचवाता ही नहीं, हवा के समान तेज़ी से भगाता है। क्या कोई भयंकर से भयंकर राक्षस ऐसा

बलवान हो सकता है जैसे ये भाप से बनाये ऐञ्जिन होते हैं, जिनको यह साधारण सा मनुष्य अपने अनुकूल हांकता है। यह सब उसके पुरुषार्थ की ही तो महिमा है। मनुष्य को अपने पुरुषार्थ से किञ्चितमात्र भी असावधान तथा विचलित होते देख यही मनुष्य का बनाया ऐञ्जिन ऐसा भयंकर होजाता है कि पल की पल में हजारों मनुष्यों को यमद्वार पहुँचा देता है।

धन्य है हे मनुष्य! तेरे पुरुषार्थ को, धन्य है तेरे साहस को, जो ऐ [illegible] सेवा

है कि जो पुरुषार्थ करते हैं वे मालिक बनते हैं और जो पुरु
होकर अपने कर्मों के ही भरोसे बैठे रहते हैं वे गुलाम बन जाते
पशुओं के समान समझे जाते हैं।

एक बात और भी कह देने की है और वह यह कि मनु की बस्ती में चोर, डाकू, ज़ालिम, हत्यारे, राक्षस लोभी, मानी विषयी सब ही प्रकार के मनुष्य होते हैं, मांस, शराब व्यभिचार आदिक सभी प्रकार के कुव्यसनों की दुकानें लगी रहती हैं, और चारों तरफ़ विषय कषायों में फंसने के ही प्रलोभन नज़र आते हैं। मुनि महाराज तो ऐसे भयंकर संयोग में अपने परिणामों को संभाले रखना अपनी सामर्थ्य से बाहर समझ बस्ती को छोड़ बन को चले जाते हैं, परन्तु सद्‌गृहस्थ बेचारा कहां चला जाय? उसको तो इन सब प्रकार के दुष्ट मनुष्यों और खोटे प्रलोभनों में ही रहना होता है। इन ही के बीच में वह इस प्रकार रहता है जैसे पानी में कमल। इस कारण सद्‌गृहस्थ का पुरुषार्थ मुनियों के पुरुषार्थ से भी कहीं अधिक प्रशंसनीय और बलवान् है, जिससे पुरुषार्थ की महान् सामर्थ्य का पूरा पूरा अन्दाज़ा हो जाता है। धन्य है वे गृहस्थ जो इस पुरुषार्थ का सहारा लेकर कर्मों का भी मुकाबला करते हैं और निमित्त कारणों का भी अपने ऊपर क़ाबू नहीं चलने देते हैं, कायर और अकर्मण्य बनकर इस प्रकार नहीं लुढ़कते फिरते हैं, जैसे पत्थर वा लकड़ी के टुकड़े नदी के भारी बहाव में बहते और लुढ़कते फिरा करते हैं।

हमारी भी यही भावना है कि हम लकड़ पत्थर की तरह निर्जीव न बनकर पुरुषार्थी बनें और अपने मनुष्य जीवन को सार्थक कर दिखावें।

"बहुत रुलो संसार में, वश प्रमाद के होय।
अब इन तज उद्यम करो, जातें सब सुख होय॥"
"भाग्य भरोसे जे रहैं, ते पाछे पछतांय।
काम बिगाड़ें आपनो, जग में होत हंसाय॥"